2 मई 2012, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-32 / 2012-14

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान प्रतिदिन अब आधे घंटे

जी-जागरण पर

प्रतिदिन प्रातः 6.30 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 35, अंक : 3 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

मई (प्रथम), 2012 (वीर नि. संवत्-2538) सह-सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

कानजीस्वामी की जयन्ती मनाई

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की 123वीं जन्म जयन्ती दिनांक 23 अप्रैल को बहुत आनन्दपूर्वक मनाई गई।

इस अवसर पर गुरुदेवश्रीकानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचन के पश्चात् एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने की। उन्होने गुरुदेवश्री के जीवनकाल की घटनाओं का उल्लेख करते हुए उन्हें क्रमबद्धपर्याय, निश्चय-व्यवहार इत्यादि गूढ विषयों के रहस्योद्घाटक एवं प्रचारक बताया।

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल एवं पण्डित पूनमचंदजी छाबड़ा, श्री ताराचंदजी सोगानी, विद्यार्थियों में से नवीन जैन उज्जैन व विवेक जैन भिण्ड ने अपने विचार प्रस्तुत किये। ज्ञायक जैन सिलवानी एवं जीवेश जैन पिड़ावा ने काव्यपाठ के माध्यम से गुरुदेवश्री के उपकार को स्मरण किया।

गोष्ठी का मंगलाचरण विवेक जैन अमरमऊ एवं सभा का संचालन पण्डित अनेकान्तजी शास्त्री ने किया।

बाल संस्कार शिविर संपन्न

मुम्बई : यहाँ एवरशाइन नगर मलाड (वे.) में दिनांक 18 से 22 अप्रैल तक 5वाँ बाल शिक्षण शिविर संपन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर, पण्डित श्रेणिकजी जबलपुर, पण्डित अश्विनभाई मलाड (ई) मुम्बई एवं पण्डित विपिनजी शास्त्री मुम्बई के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला। पण्डित विरागजी द्वारा बाल कक्षा एवं पण्डित श्रेणिकजी जबलपुर द्वारा निमित्त-उपादान की कक्षा ली गई।

शिविर का उद्घाटन श्री दिलीपभाई शाह अहिंसा चेरिटेबल ट्रस्ट मुम्बई ने किया। उद्घाटन के अवसर पर अध्यक्षता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने की

शिविर में लगभग 200-250 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

डॉ. भारिल्ल अलीगढ में

दिनांक 15 एवं 16 अप्रैल को श्री पवनकुमारजी जैन-मंगलायतन के स्वास्थ्य समाचार जानने हेतु जयपुर से डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल अलीगढ पहुँचे। वहाँ श्री पवनजी के घर पर ही डॉ. भारिल्ल के रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर मार्मिक प्रवचन हुये साथ ही मंगलायतन में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिये 'करोडपति रिक्शे वाला' विषय पर आपके मार्मिक प्रवचन का लाभ मिला।

विधान एवं ध्वजदण्डारोहण संपन्न

प्रतापगढ (राज.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी भाईजी का मंदिर में दिनांक 24 से 26 अप्रैल तक श्री पंचपरमेष्ठी विधान एवं जिनमंदिर के शिखर पर ध्वजदण्डारोहण का कार्यक्रम श्री धनपालजी महिपालजी सालगिया परिवार की ओर से संपन्न हुआ। इस अवसर पर ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना एवं पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के विविध विषयों पर तीनों समय प्रवचन का लाभ मिला।

प्रात: पंचपरमेष्ठी विधान एवं सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति पण्डित अंकितजी शास्त्री लूणदा एवं पण्डित संदीपजी शास्त्री द्वारा करायी गई।

संपूर्ण आयोजन पण्डित सुनीलजी नाके निम्बाहेड़ा, पण्डित सुनीलजी शास्त्री (मामा) के कुशल निर्देशन में पण्डित चन्दुभाई कुशलगढ एवं श्री ललितजी लूणदा के सहयोग संपन्न कराये गये। रात्रि में प्रतिदिन स्थानीय बालकों एवं युवाओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

ज्ञातव्य है कि आयोजन के पश्चात् भी 2 दिन ब्र. सुमतप्रकाशजी के प्रवचनों का लाभ स्थानीय समाज को मिला। दिनांक 28 अप्रैल को दोपहर में देवगढ में भी आपका एक प्रवचन हुआ।

शिलान्यास सम्पन्न

मुम्बई : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन मुमुक्षु मण्डल ट्रस्ट, पार्ले-सांताक्रुज के निर्देशन में श्री सीमंधरस्वामी दिग. जिनमंदिर हेतु भूमि शिलान्यास का कार्यक्रम दिनांक 16 अप्रैल 2012 को श्री शांतिलाल रतिलाल शाह परिवार, श्री अनंतभाई अमोलक सेठ परिवार, श्री जयन्तीभाई चिमनलाल दोशी परिवार एवं श्री मधुसुदन निहालचन्द शाह परिवार के करकमलों से हुआ। शिलान्यास विधि पण्डित हेमन्तभाई गाँधी, ब्र. बजूभाई शाह बड़वाण एवं श्री प्रकाशभाई शाह मलाड ने सम्पन्न कराई। इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, ब्र. हेमचन्दजी हेम, ब्र. धन्यकुमारजी बेलोकर, श्री बसंतभाई दोशी, मुम्बई पण्डित रजनीभाई दोशी, एवं पण्डित अश्विनभाई शाह की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो - वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें-
वेबसाईट - www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph. : 022-26130820, 26104912, E-Mail - info@vitragvani.com

सम्पादकीय – 76

पंचास्तिकाय : अनुशीलन

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

गाथा – १२८,१२९,१३०

विगत गाथाओं में अजीव का स्वरूप बताया है? तथा १२७ गाथा आचार्य कुन्दकुन्द के समयसारादि ग्रन्थों में भी है, इसप्रकार इस गाथा का महत्त्व बताते हुए इसका विशेष उल्लेख किया है।

अब गाथा १२८,१२९,१३० में जीव–पुद्गल के संयोग से उत्पन्न ६ प्रकार के संस्थान व संहनन आदि सब जड़ हैं ह्न यह बताते हैं –

मूल गाथायें इसप्रकार हैं –

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी।।१२८।।
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु बिसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा।।१२९।।
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो।।१३०।।

(हरिगीत)

संसार तिष्ठें जीव जो रागादि युत होते रहें।
रागादि से हो कर्म आस्रव करम से गति–गमन हो।।१२८।।
गति में सदा हो प्राप्त तन–तन इन्द्रियों से सहित हो।
इन्द्रियों से विषयग्रहण अर विषय से फिर राग हो।।१२९।।
रागादि से भवचक्र में प्राणी सदा भ्रमते रहें।
हैं अनादि अनन्त अथवा, सनिधन जिनवर कहे।।१३०।।

जो संसार में स्थित जीव हैं, उनसे रागादि स्निग्ध परिणाम होता है, उन परिणामों से कर्म और कर्म से गतियों में गमन होता है।

'गति' वालों को देह होती है, देह से इन्द्रियाँ होती हैं, इन्द्रियों से विषयग्रहण और विषयग्रहण से राग अथवा द्वेष होता है।

संसार चक्र में जीव को ऐसे भाव अनादि–अनन्त अथवा अनादि–सांत रूप से चक्र की भाँति पुनः पुन होते रहते हैं।

आचार्य श्री अमृतचन्द्र देव उक्त गाथाओं की टीका में कहते हैं कि इस लोक में संसारी जीव को अनादि बंध रूप उपाधि के वश स्निग्ध परिणाम होते हैं, परिणामों से पौद्गलिक कर्म, कर्म से नरकादि गतियों में गमन, गति से देह, देह से इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से विषयग्रहण, विषय ग्रहण से राग–द्वेष, राग–द्वेष से फिर रागादि रूप स्निग्धपरिणाम, उन परिणामों से फिर द्रव्यकर्म, द्रव्यकर्म से फिर नरकादि गतियों गमन – इस प्रकार संसार चक्र के अन्योन्य कार्य–कारणभूत जीव व पुद्गल परिणामात्मक कर्मजाल के चक्र में जीव अनादि–अनन्त रूप से या अनादि–सांतरूप से चक्र की भाँति पुनः पुनः घूमता रहता है।

अब कवि हीरानन्दजी काव्य में कहते हैं –

(सवैया इकतीसा)

जगवासी जीव विषै मोह–राग–दोष–रूप,
परिनाम वर्तमान सदा आचरतु है।
ताही परिनाम का निमित्त पाय द्रव्य कर्म,
नानारूप नवा बांध जीव मैं भरतु है।।
करम कै उदै आये गतिनाम उदै होइ,
तातैं च्यारौं गति माहि देह कौं धरतु है।
देह में इन्द्रिय पाँच खाँचि सकै नाहि जीव,
भवरूप मरते मैं दौरि कै परतु है।।८६।।
याही जग माहीं जीव विषयी अनादि का ही,
आपरूप भूलि–भूलि विषै धूल रुलै है।
कहूँ राग रंजित है कहूँ दोष गंजित है,
मोह की गहलता सौं सदाकाल डोले है।।
नाना कर्म बन्ध करै अंध होइ लोक फिरै,
एक कर्म बांधे, एक कर्म गांठि खोलै हैं।
ऐसे ही अभव्य ढाल, ढली है अनंतकाल,
भव्यकाल पाय तिरै जिनराज बोलै हैं।।८७।।

इन गाथाओं का अर्थ करते हुए गुरुदेव श्री कानजीस्वामी कहते हैं कि ''जो संसारी जीव अपने शुद्ध आत्मा को न जानकर स्वयं को कर्मोपाधि के वश करते हैं। दया, दानादि जितना ही स्वयं को मानकर भ्रम से कर्मों को बांधते हैं, वे पर्याय बुद्धि वाले जीव मिथ्यात्वरूप परिणाम करते हैं तथा कर्म बाँधते हैं। 'कर्म बांधते' हैं का तात्पर्य यह है कि उक्त मिथ्यात्वरूप अशुद्धपरिणामों का निमित्त पाकर जड़ कार्माण वर्गणायें स्वयं अपने कारण परिणम जाती हैं।

जिन्हें गतिरहित स्वभाव की खबर नहीं है, वे जीव कर्मों के निमित्त से गति को प्राप्त होते हैं तथा जैसी गति की योग्यता होती है, वैसा शरीर मिलता है। जैसा शरीर होता है वैसी तदनुकूल इन्द्रियाँ मिलती हैं। जैसी इन्द्रियाँ होतीं तदनुकूल विषयों का ग्रहण होता है। इन्द्रियाँ बाह्य विषयों को ग्रहण करती हैं, आत्मा को नहीं। इस तरह अज्ञानी की दृष्टि विषयों पर जाती है। उसे अपने शुद्ध आत्मतत्त्व की खबर ही नहीं होती। इस कारण उसकी दृष्टि अनिष्ट पदार्थों के प्रति राग–द्वेष किया करती है। इसके फल में पूर्ण कर्म के अनुसार नवीन कर्मबंध होता रहता है। मिथ्यादृष्टि जीव का कर्मों के साथ कारण–कार्य सम्बन्ध है।''

इसप्रकार रागी–द्वेषी मलिनभाव वाले आत्मा को ऐसे अशुद्ध भाव हुआ करते हैं। भव्य जीव यदि अपने (निज) आत्मा का भान करे तो

संसार का अंत अवश्य आता ही है। अतः यह नक्की हुआ कि पुद्गल परिणाम के निमित्त से जीव अपने अज्ञान के कारण अशुद्ध परिणाम करता है तथा उन अशुद्ध परिणामों के निमित्त से जड़कर्म का परिणाम होता है। ऐसा कहकर यह कहते हैं कि कर्म एवं राग के ऊपर से दृष्टि हटाले और ध्रुव आत्मद्रव्य पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर! ऐसा करने से ही तेरा कल्याण होगा।

गाथा – १३१

विगत तीन गाथाओं में जीव और अजीव के संयोगी परिणामों से निष्पन्न होने वाले अन्य सात पदार्थों के कथन के हेतु जीवकर्म और पुद्गल कर्म के चक्र का वर्णन किया है।

अब प्रस्तुत गाथा में कहा जा रहा है कि यह पुण्य–पाप के योग्य भावों के स्वरूप का कथन है।

मूल गाथा इसप्रकार है –

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो।।१३१।।

(हरिगीत)

मोह राग अर द्वेष अथवा हर्ष जिसके चित्त में।
इस जीव के शुभ या अशुभ परिणाम का सद्भाव है।।१३१।।

जिसके भाव में मोह–राग–द्वेष अथवा चित्त प्रसन्नता है, उसे शुभ या अशुभ परिणाम हैं।

यहाँ टीका में आचार्य श्री अमृतचन्द्र कहते हैं कि दर्शनमोहनीय के निमित्त से जो कलुषित परिणाम होते हैं, वह मोह है। चारित्र मोहनीय का विपाक जिसका निमित्त है – ऐसी प्रीति–अप्रीति राग–द्वेष हैं।

चारित्र मोहनीय के ही मन्द उदय में होने वाले विशुद्ध परिणाम मन की प्रसन्नता रूप परिणाम हैं। इसप्रकार ये मोह–राग–द्वेष अथवा चित्त प्रसाद जिनके भावों में है, उसके शुभ या अशुभ परिणाम हैं। उसमें जहाँ प्रशस्त राग तथा चित्त प्रसन्नता है, वहाँ शुभ–परिणाम हैं तथा जहाँ मोह–राग–द्वेष हैं, वहाँ अशुभ परिणाम हैं।

कवि हीरानन्दजी काव्य में कहते हैं कि –

(दोहा)

मोह राग अरु दोष जसु, चित्त प्रसन्नता होइ।
ता आतमकै सुभ असुभ, करमरूप फल होइ।।९२।।

(सवैया इकतीसा)

दरसनमोहनीकै उदै गहलताई है,
तत्व अर्थ जानै नाहिं मोह ताकौं कहिए।
इष्टविषै प्रीति राग दोष है अनिष्टविषै,
दौनौंरूप मोह एक–भाव पाप लहिए।।
मोहमंदउदै भये चित्तमैं प्रसन्नताई,
दान–पूजा आदि तातैं पुण्यबंध गहिए।
दौनौंतैं निराला जानि चिदानंद आप मानि,
तीनौं भाव नासि नासि मोखरूप रहिए।।९३।।

(दोहा)

पुण्य–पाप ए आपतैं, न्यारे सदा विचार।
मोखरूप बाधक सदा, साधक–पद संसार।।९४।।

कवि हीरानन्दजी के काव्य का भाव यह है कि जिसका चित्त राग–द्वेष–मोह में प्रसन्न होता है, उसको शुभ–अशुभ कर्मों का बंध होता है। दर्शनमोह से ही गहलता आती है कि जिससे तत्त्वार्थ को नहीं जान पाता। इष्टानिष्ट पदार्थों में राग–द्वेष करता है। जब मोह मंद होता है तब चित्त में प्रसन्नता होती है, दान–पूजा आदि करके पुण्य–बंध करता है। जब यह स्वयं को पुण्य–पाप से निराला जानता है, स्वयं को चिदानन्द स्वरूप मानता है तब मोक्ष को प्राप्त करता है।

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी इस गाथा पर व्याख्यान करते हुए कहते हैं कि आचार्यदेव प्रथम मोह के परिणाम की पहचान कराते हैं। 'आत्मा की शान्ति आत्मा में है' ऐसा न मानकर 'पर' में से शान्ति मिलती है' – ऐसी मान्यता अज्ञान का परिणाम है, इसलिए जिनको सुखी होना हो, उन्हें चिदानन्द आत्मा में श्रद्धा–ज्ञान करना चाहिए।

आत्मा स्वयं सत् पदार्थ हैं, उसकी अपेक्षा अन्य वस्तुएँ असत् हैं।

दया दानादि का भाव पुण्य हैं, उसका विषय परद्रव्य है। परवस्तु की रुचि करना राग रूप पाप का परिणाम है। पर वस्तु हमारे सोच से नहीं आती जाती है। परवस्तु और हमारे बीच वज्र की दीवाल है।

भावार्थ यह है कि जिन जीवों को शुद्ध आत्म तत्व में रुचि नहीं है तथा सच्चे देव–शास्त्र–गुरु की रुचि (श्रद्धा) नहीं है, उन्हें मिथ्यात्व का परिणाम होता है। 'दर्शनमोहनीय कर्म के उदय के कारण मोह का परिणाम होता है।' यह कथन निमित्त की अपेक्षा से है। जब उपादान में कर्म के निमित्त से भाव होता है, उसे नैमित्तिक परिणाम कहते हैं। अज्ञानी जीव पर पदार्थों को जो आत्मा का सहायक मानता है, वह उसकी भ्रान्ति है। पुण्य का परिणाम आत्मा को सहायक नहीं है तथापि पुण्य के परिणाम से लक्ष्य जो हो तथा पुण्य से जो वस्तु प्राप्त हो उससे आत्मा का कल्याण नहीं होता।

जहाँ मोह का परिणाम हैं, इन्द्रियों के विषयों में तथा धन–धान्यादि में अप्रशस्त राग है, उसे अशुभ भाव कहते हैं, वह अशुभभाव शुद्ध–आत्मा से जुदा है।''

इसप्रकार इस गाथा में पुण्य–पाप के योग्य परिणामों का कथन करके उनसे भिन्न आत्मा के स्वरूप की पहचान कराई है तथा उस आत्मा में ही जमने–रमने की प्रेरणा दी है। ●

प्रशिक्षण शिविर पत्रिका

प्रशिक्षण शिविर पत्रिका

रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का

93 पहला प्रवचन – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

इस पत्र में यह पंक्ति भी ध्यान देने योग्य है, जिसमें लिखा है कि **तुम्हारे चिदानन्दघन के अनुभव से सहजानन्द की वृद्धि चाहिए।**

देखो, यहाँ लौकिक सुखों की कामना नहीं की; अपितु ज्ञानानन्द-स्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न अतीन्द्रिय आनन्द की बात की है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि यहाँ अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति की नहीं, वृद्धि की कामना की है।

आपको अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो – ऐसा लिखकर वे सभी साधर्मी भाइयों को अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से वंचित मानने को तैयार नहीं थे। इसलिए उन्होंने **अतीन्द्रिय आनन्द की वृद्धि की कामना की है।**

अतीन्द्रिय आनन्द की उत्पत्ति माने संवर, आनन्द की वृद्धि माने निर्जरा और आनन्द की पूर्णता माने मोक्ष।

साधर्मी भाइयों को आनन्द की पूर्णतारूप मोक्ष तो नहीं मान सकते और अभी आनन्द की उत्पत्ति ही नहीं हुई – ऐसा भी मानने को मन नहीं करता। अत: सहजानन्द की वृद्धि की भावना भाना ही उचित है।

पण्डितजी के इस एक वाक्य में सम्पूर्ण समयसार समाहित हो गया है। इसमें कहा गया है कि सहजानन्द की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता चिदानन्दघन के अनुभव से होती है, ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से होती है; पर के आश्रय से नहीं, तीर्थों के आश्रय से नहीं, क्रियाकाण्ड के आश्रय से नहीं, पूजा-पाठ से नहीं, दानादिक से नहीं; यहाँ तक कि देव-शास्त्र-गुरु के आश्रय से भी नहीं। अरे, भाई ! एक अस्ति में से जितनी भी नास्ति निकालना हो, निकाल लो; जितनी निकाल सकते हो, निकाल लो। **एक आत्मा को छोड़कर जिन-जिन के आश्रय से तुमने अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति मान रखी है, उन-उनसे नहीं होती - ऐसा समझ लेना।**

समयसार में भी तो यही है। इससे अतिरिक्त और क्या है ?

पर से भिन्न, पर्याय से पार, ज्ञान और आनन्द का घनपिण्ड त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा के आश्रय से, अनुभव से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है। **आत्मा के अनुभव में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र - ये तीनों चीजें शामिल हैं। चौथे गुणस्थान के और उसके ऊपर के गुणस्थानों के सभी जीव अनुभवी हैं।**

अनुभव दो प्रकार का होता है। एक तो वह जब उपयोग आत्मसम्मुख होता है, आत्मानुभव होता है, शुद्धोपयोगरूप दशा होती है।

आत्मानुभूतिपूर्वक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति हो जाने के बाद, जब उपयोग बाहर आ जाता है, अन्य शुभाशुभभावों और शुभाशुभ क्रियाओं में लग जाता है; किन्तु अनुभूति के काल में आत्मा में जो अपनापन आया था, आत्मा को निजरूप जाना था, उससे अनंतानुबंधी कषाय के अभावपूर्वक जो शुद्धि प्रगट हुई थी; वह सब कायम रहती है; इसकारण **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय कायम रहता है, लब्धिज्ञान में आत्मा निजरूप भासित होता रहता है, आत्मा में अपनापन बना रहता है, अनंतानुबंधी कषाय के अभावरूप शुद्धि कायम रहती है; उक्त स्थिति भी अनुभवरूप ही है। इसे हम शुद्धपरिणति भी कह सकते हैं।**

इसप्रकार अनुभव दो प्रकार का हो गया। एक अनुभूति के काल का अनुभव और दूसरा सम्यग्दृष्टि धर्मात्माओं को निरन्तर रहनेवाला अनुभव।

लोक में बोलते हैं न कि मुझे अमुक काम का दस वर्ष का अनुभव है। जब लोग यह कहते हैं कि मुझे एम.ए. कक्षाओं को पढ़ाने का दस वर्ष का अनुभव है तो क्या वे दस वर्ष तक निरन्तर पढ़ाते रहे हैं ?

नहीं, पढ़ाना तो माह में कुछ दिनों, घंटे दो घंटे का ही होता है। शेष समय में तो खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना – सभी कुछ चलता है।

इसीप्रकार भले ही उपयोग बाह्य पदार्थों में हो, यदि रत्नत्रय कायम है तो वह काल भी एक अपेक्षा से अनुभव का काल ही है।

आप कह सकते हैं कि दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है और आप दोनों को अनुभव कह रहे हैं ?

अरे, भाई ! ऐसा नहीं है। दोनों स्थितियों में विशेष अन्तर नहीं है; क्योंकि दोनों ही स्थितियों में चौथे गुणस्थान में नहीं बंधनेवाली ४१ प्रकृतियों का बंध नहीं होता और निर्जरा निरन्तर होती रहती है। ऐसा नहीं है कि उक्त प्रकृतियों का बंध मात्र शुद्धोपयोगरूप अनुभव के काल में ही न होता हो और भोजन करते समय, युद्ध करते समय उनका बंधना आरंभ हो जाता हो। इसीप्रकार ऐसा भी नहीं है कि उसे अनुभूति के काल में ही निर्जरा होती हो, भोजनादि के काल में न होती हो।

बंध और संवर-निर्जरा की प्रक्रिया का धर्मकांटा करणानुयोग अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में उक्त तथ्य का उद्घाटन करता है।

अरे, भाई ! बंध न होने और संवर-निर्जरा होने का मूल कारण शुद्धोपयोग के साथ-साथ शुद्धपरिणति भी है। छठवें गुणस्थानवाले मुनिराजों को आहार-विहार और उपदेशादि के काल में शुद्धोपयोग का अभाव होने पर भी पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक के आत्मानुभव के काल से भी असंख्य गुणी निर्जरा होती है।

उक्त तथ्य से अपरिचित सामान्यजनों की स्थिति तो यह है कि जरा सा पूजा-भक्ति का शुभराग हुआ, दान देने का भाव आ गया तो गलगलियाँ छूटने लगती हैं और वे ऐसा मानने लगते हैं कि हम धर्मात्मा

हो गये।

अरे, भाई ! इससे तो पुण्य का बंध होता है, बंध का अभाव नहीं, निर्जरा नहीं। उक्त भावों से यह पुण्यात्मा भले ही बन जाय, पर धर्मात्मा नहीं बन सकता; क्योंकि धर्म का आरंभ तो सम्यग्दर्शन से ही होता है।

अनुभव के उक्त दूसरे अर्थ के अनुसार टोडरमलजी कहते हैं कि अनुभवी होने से तुम्हें सहजानन्द तो निरंतर है ही; हम तो आपके उक्त सहजानंद की वृद्धि चाहते हैं।

तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक अनंतानुबंधी कषाय के जाने से आपको सहजानन्द तो है ही, हम तो उसमें वृद्धि चाहते हैं।

यद्यपि चतुर्थ गुणस्थान में भी प्रतिसमय, सहजानन्द की वृद्धि हो रही है; तथापि हम चाहते हैं कि आपको अप्रत्याख्यानावरण का अभाव होकर पंचम गुणस्थान प्रगट हो। आप उससे भी आगे बढ़े। नग्न दिगम्बर मुनिदशा को प्राप्त हों।

आत्मानुभव के काल में वृद्धि होना और वियोगकाल में कमी होना भी सहजानन्द की वृद्धि है। जैसे किसी सम्यग्दृष्टि जीव को छह माह में एक बार क्षणभर के लिए आत्मानुभवरूप दशा होती है। छह माह के वियोगकाल में निरन्तर कमी होते जाना और अनुभूति की स्थिरता के काल में वृद्धि होते जाना ही अनुभूति की वृद्धिंगत दशा है।

ज्यों-ज्यों आत्मा में शुद्धि की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती जाती है और ज्यों-ज्यों पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती जाती है, त्यों-त्यों आत्मा में शुद्धि की वृद्धि होती जाती है।

आत्मा में प्रतिसमय होनेवाली शुद्धि की वृद्धि भावनिर्जरा है और उक्त शुद्धि की वृद्धिपूर्वक कर्मों का झड़ना द्रव्यनिर्जरा है। इसप्रकार हम देखते हैं कि चिदानन्दघन के अनुभव से होनेवाली सहजानन्द की वृद्धि में सम्पूर्ण मोक्षमार्ग समाहित है, समयसार समाहित है।

जिसप्रकार समयसार की ६वीं व ७वीं गाथाओं में संक्षेप में सम्पूर्ण समयसार समाहित हो जाता है; उसीप्रकार पण्डित टोडरमलजी की उक्त एक पंक्ति में भी समयसार समाहित हो गया है।

समयसार के १५वें कलश और १६वीं गाथा में भी यही बात है। कहा है ह्न

(अनुष्टुभ्)

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभि:।
साध्यसाधकभावेन द्विधैक: समुपास्यताम् ।।१५।।

(हरिगीत)

है कामना यदि सिद्धि की ना चित्त को भरमाइये।
यह ज्ञान का घनपिण्ड चिन्मय आतमा अपनाइये।।
बस साध्य-साधक भाव से इस एक को ही ध्याइये।
अर आप भी पर्याय में परमातमा बन जाइये।।१५।।

स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक पुरुष साध्यभाव और साधकभाव से इस ज्ञान के घनपिण्ड भगवान आत्मा की ही उपासना करें।

इस कलश का भाव यह है कि जिन पुरुषों में आत्मकल्याण की भावना हो, वे पुरुष चाहे साध्यभाव से करें या साधकभाव से करें; पर उन्हें ज्ञान के घनपिण्ड एकमात्र अपने आत्मा की उपासना करना चाहिए।

वह उपासना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के सेवनरूप ही है।

जैसा कि १६वीं गाथा में कहा है -

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ।।१६।।

(हरिगीत)

चारित्र दर्शन ज्ञान को सब साधुजन सेवें सदा।
ये तीन ही हैं आतमा बस कहे निश्चयनय सदा।।१६।।

साधुपुरुष को दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सदा सेवन करना चाहिए और उन तीनों को निश्चय से एक आत्मा ही जानो।

इसप्रकार हम देखते हैं कि चिदानन्दघन के अनुभव से सहजानन्द की वृद्धि में ज्ञान के घनपिण्ड भगवान आत्मा की उपासना या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन - सबकुछ आ जाता है।

यद्यपि पुराने जमाने में यथायोग्य नमस्कार के बाद **अत्र कुशलं तत्रास्तु** लिखने की परम्परा थी, जिसका अर्थ होता है कि यहाँ कुशलता है और आपके यहाँ भी कुशलता हो - हम ऐसी कामना करते हैं। उसके स्थान पर **यहाँ यथासंभव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्दघन के अनुभव से सहजानन्द की वृद्धि चाहिए -** वाक्य लिखकर पण्डित टोडरमलजी ने एकप्रकार से सम्पूर्ण मोक्षमार्ग का ही दिग्दर्शन कर दिया है। **ज्ञानी की बात-बात में द्वादशांग का सार आ जाता है।**

सामान्यजनों की स्थिति तो यह है कि कोई लड़का-लड़की उन्हें नमस्कार करे तो वे खुश रहो बेटा, दूधो नहाओ, पूतो फलो, तुम्हारे धंधे-व्यापार में तरक्की हो, न मालूम क्या-क्या कहते हैं ?

अरे, भाई ! ये सब पापभाव हैं और यह आशीर्वाद पापभावों की वृद्धि का आशीर्वाद है। रुपया-पैसा परिग्रह है और उसकी वृद्धि परिग्रहरूप पाप की ही वृद्धि है। अरे, भाई ! यह आशीर्वाद है या अभिशाप ?

ज्ञानीजनों की वृत्ति तो देखो ! वे तो तुम्हारे चिदानन्दघन के अनुभव से सहजानन्द की वृद्धि चाहिए - इसप्रकार का मंगल आशीर्वाद देते हैं।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि तुम्हारे चिदानन्दघन के अनुभव से सहजानन्द की वृद्धि चाहिए के ठीक पहले यह भी लिखा है कि यहाँ यथासंभव आनन्द है। यह आनन्द भी चिदानन्दघन के अनुभव से ही उत्पन्न हुआ आनन्द है। यथासंभव का अर्थ है भूमिकानुसार। तात्पर्य यह है कि पंडितजी परोक्षरूप से यह कह रहे हैं कि मैं भी यहाँ अपनी भूमिकानुसार चिदानंदघन के अनुभव से उत्पन्न आनंद से आनंदित हूँ।

(क्रमश:)

जयपुर पंचकल्याणक प्रत्यक्षदर्शियों की कलम से

जयसिंगपुर-कोल्हापुर (महा.) से कल्पवृक्ष चेरिटेबल ट्रस्ट के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री शान्तिनाथ ज. पाटील लिखते हैं कि -

''मैंने अपने 70 वर्ष के जीवन में 60-70 से भी अधिक पंचकल्याणक दक्षिण में देखे हैं, कुछ प्रतिष्ठा में तो राजा, इन्द्र, कुबेर बनने का सौभाग्य भी मिला, मेरे निर्देशन में भी कुछ पंचकल्याणक संपन्न हुये; परन्तु अभी जयपुर का जो पंचकल्याणक महोत्सव देखा है, उसके सामने बाकी 60-70 पंचकल्याणक अधूरे लगे। यहाँ भी विधि-विधान होता है; परन्तु क्यों और किसलिये विधि की जा रही है, उसका ज्ञान हमें नहीं था, उस सम्बन्धी विशेष ध्यान भी नहीं दिया जाता था, मात्र बोली, बैण्डबाजे, हाथी, घोड़े, आरती-भक्ति तक ही पंचकल्याणक सीमित रहे हैं। ज्ञानार्जन का जो काम होना चाहिये, वह जयपुर में प्रमुखता से देखने में आया।

मेरे गुरु श्री समन्तभद्रजी महाराज (बाहुबली) कहा करते थे कि 'पूजा-विधान व शिविर का आयोजन देखना अथवा सीखना हो तो जयपुर, सोनगढ वालों से सीखो, समय का क्या महत्व है।' मैंने अपनी आँखों से पूरा पंचकल्याणक देखा, एक भी कार्यक्रम देर से या समय के पहले समाप्त नहीं हुआ। मैं इसे एक सुयोग्य नियोजन का सर्वोत्तम फल समझता हूँ।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव का मैं एक ऐसा साक्षीदार हूँ, जिसने जब पहले दिन मण्डप में प्रवेश किया तब से पूरे सात दिन के बाद ही मण्डप से बाहर आया, एक क्षण भी किसी कार्यक्रम से वंचित नहीं रहा। मेरे 70 वर्ष की उम्र में मैं इसे बड़ी उपलब्धि समझता हूँ।

पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के सम्मानीय ट्रस्टी, प्रतिष्ठा सहयोगी, भावी परमात्मा (विद्यार्थी विद्वान) एवं साधर्मीजनों ने जो तन-मन-धन से सहयोग दिया, वह स्वर्ण अक्षर में लिखने योग्य है। साधर्मियों के प्रति कैसा स्नेह होना चाहिये, यह प्रतिष्ठा में देखने को मिला।

महोत्सव की तैयारी के बारे में दक्षिण प्रान्त में भी काफी चर्चा होती रहती थी। महावीर पाटील जयपुर पंचकल्याणक के सम्बन्ध में कहते थे कि एक बार जयपुर पंचकल्याणक जरूर देखना। वहाँ के विधि-विधान यह देखने जरूर जाना कि साधर्मियों का वात्सल्य कैसा होना चाहिये और कैसा होता है। अपने घर के पधारे जमाई को जो सन्मान देते हो उससे भी अच्छा आपको वहाँ सम्मान मिलेगा। यह बात सुनकर कुछ नये जिज्ञासु भी वहाँ पहुँचे। लगभग 600 से भी अधिक साधर्मीजन दक्षिण (कर्नाटक-महाराष्ट्र) से आये थे।

वहाँ की पूरी व्यवस्था देखने के बाद लोगों ने कहा कि हमारे यहाँ तो नये जमाई की एक ही दिन खातिरदारी होती है और दूसरे दिन सुबह विदाई का कार्यक्रम होता है। आपने तो सात दिन तक पधारे सभी साधर्मियों की खूब खातिरदारी की, वह भी पूरे सात दिन तक।

यह आदर्श पंचकल्याणक देखकर मेरी भी तीव्र भावना जागृत हुई कि ऐसा एक छोटा सा पंचल्याणक महोत्सव जयसिंगपुर नगर में हो जिसका निर्देशन आप ही करें। जिससे दक्षिण प्रान्त के लोगों के लिए एक आदर्श स्थापित हो, इस कार्य के लिए मैं कटिबद्ध हूँ, आप अपनी राय से जरूर अवगत कराना। पुन: एक बार सभी सहयोगी बन्धुओं को याद करके विराम लेता हूँ।''

डॉ. भारिल्ल के विदेश कार्यक्रम में परिवर्तन

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की यह 30वीं विदेश यात्रा है। जिन भारतवासी बन्धुओं के परिवार या सम्बन्धी वहाँ रहते हों, वे उन्हें सूचित कर दें।

ज्ञातव्य है कि जैन पथप्रदर्शक अप्रैल (प्रथम) अंक में जो कार्यक्रम छपा है, उसमें परिवर्तन हो गया है, परिवर्तित नवीन कार्यक्रम इसप्रकार है -

क्र.	शहर	सम्पर्क-सूत्र	दिनांक
1.	सिंगापुर	**Ashok Patni 006596357834**	8 से 12 जून
2.	लॉस एंजिल्स	**Naresh Palkhiwala (R) 562-404-1729 (O) 626-814-8425 ext. 8725 E-mail : naresh.palkhiwala@westcov.org**	14 से 20 जून
3.	सान् फ्रांसिस्को	**Ashok Sethi (R) 408-517-0975 E-mail : ashok_k_sethi@yahoo.com**	21 से 26 जून
4.	टोरंटो	**Sanjay Jain E-mail : sanjay.jain@opg.com**	28 जून से 4 जुलाई
5.	शिकागो	**Niranjan Shah (R) 847-330-1088 E-mail : shahniranjan@hotmail.com Bipin Bhayani (O) 815-939-3190 (R) 815-939-0056**	5 से 10 जुलाई
6.	डलास	**Atul Khara 469-831-2163 972-424-4902 insty@verizon.net**	11 जुलाई से 15 जुलाई
7.	लन्दन	**Bhimji Bhai Shah 0044-1923826135 E-mail : bhimji@yahoo.com Jayanti Bhai (Gutka) 0044-208 907 8257 (H) E-mail : jdgudhka@intraport.co.uk**	16 से 18 जुलाई
8.	मुम्बई	श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल	20 जुलाई

प्रकाशन तिथि : 28 अप्रैल 2012

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127